हमारा परमेश्वर सृष्टिकर्त्ता है

किसी न किसी तरह शक्ति, विशेषकर असीमित शक्ति की अभिव्यक्ति पर विचार किए बिना सोचना हमारे लिए कठिन है। शक्ति का हमें मुख्यत: इसके प्रभाव से पता चलता है। शक्ति का इस्तेमाल ही शक्ति प्रदर्शन है। मनुष्य चाहे उनके पास सीमित शक्ति हो, शक्ति का अप्रकट कवच भी रखते हैं और विभिन्न प्रकार से इसका इस्तेमाल करते हैं। बिजली की गरज में पाई जाने वाली ऊर्जा का इस्तेमाल घरों तथा नगरों में प्रकाश के लिए किया जाता है। अणु में पाई जाने वाली शक्ति ऊर्जा के स्त्रोत में इस्तेमाल की जाती है। पेट्रोलियम की शक्ति को किसी वाहन के इंजन में डालने से हम कहीं आ-जा सकते हैं। ये उदाहरण काफी प्रभावी हैं। अपने संसार में शक्ति के इन प्रयोगों से हम सब प्रभावित होते हैं।

शक्ति के ये उदाहरण वास्तव में उस शक्ति के इस्तेमाल के बारे में हैं जो पहले से ही वर्तमान है। लोग उस शक्ति को खोजते, बनाते, नियन्त्रित और इसका इस्तेमाल करते हैं जो पहले से ही हमारे संसार में अप्रकट है। इससे हमारे संसार की प्रकृति और स्त्रोत का कुछ संकेत मिलता है। यह बड़े ही नियमित ढंग से नियन्त्रित की गई आश्चर्यजनक शक्ति से चल रहा है। हमारे भौतिक संसार को बनाने वाले अणु मूलत: ऊर्जा के साथ बहते हैं। यदि उन्हें विखण्डन या गलन की प्रक्रियाओं में अस्त-व्यस्त कर दिया जाए, तो अकल्पनीय शक्ति के रूप में एक बहुत बड़ी अव्यवस्था फैल जाएगी।

इस सब का परमेश्वर से क्या सम्बन्ध है? अपने पहले खण्ड "परमेश्वर की असीमितता" में हमने परमेश्वर की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिशालिता पर चर्चा की थी। सबसे शक्तिशाली होने के कारण, परमेश्वर में रचना करने की शक्ति है। शक्ति कार्य करने से दिखाई जाती है। परमेश्वर सब कुछ जानता है, इसलिए उसकी सृष्टि "उसकी कल्पना के अनुसार" ही है। यह वैसी ही है जैसी वह चाहता है। हर जगह होने के कारण, परमेश्वर अन्तर्यामी है। उसने संसार की रचना करके अपने आपको प्रकट कर दिया है। इसलिए सृष्टि में हमें परमेश्वर का ही स्वभाव दिखाई देता है। पवित्र शास्त्र का दृष्टिकोण यही है: "आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की" (उत्पत्ति 1:1)। इसी कारण भजन लिखने वाला पुकार उठा था "हे यहोवा हमारे प्रभु, तेरा नाम सारी पृथ्वी पर क्या ही प्रतापमय है!..." (भजन 8:1; आयत 9 भी देखिए)। हमारी पृथ्वी परमेश्वर की सृजनात्मकता का विशाल प्रदर्शन है। क्यों? सृष्टि स्वयं परमेश्वर के सृजनात्मक स्वभाव तथा शक्ति की

सुव्यवस्थित अभिव्यक्ति है। पहले खण्ड में हमने संक्षेप में उसके सृजनात्मक कार्य की व्यापकता का सुझाव दिया था। इस खण्ड में हम परमेश्वर की सृष्टि में पृथ्वी व मनुष्य के महत्व तथा भूमिका पर ज़ोर देंगे।

पृथ्वी से बनाया गया

हमें बताया गया है कि ''यहोवा परमेश्वर ने आदम को भूमि की मिट्टी से रचा और उसके नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया और आदम जीवता प्राणी बन गया'' (उत्पत्ति 2:7)। हमारी ''रचना'' अर्थात शारीरिक बनावट, इस *पृथ्वी* से है, इसलिए हमारा और पृथ्वी का आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। भौतिक अस्तित्व होने के कारण हमारा बनाने वाला एक ही है और हमें एक जैसे तत्वों से बनाया गया है। भौतिक जीव होने के कारण, हम पृथ्वी से हैं, पृथ्वी पर रहते हैं, और पृथ्वी में लौट जाते हैं (उत्पत्ति 1:29; 2:9, 16; 3:17–19)। इसलिए, कहा जा सकता है कि परमेश्वर ने अपनी सृजनात्मक बुद्धि से, *अपने भौतिक मानवीय जीव को अपनी भौतिक सृष्टि अर्थात पृथ्वी के साथ जोड़ा है*।[1] इसलिए पृथ्वी हमारे रहने के लिए संदर्भ बन गई।

पृथ्वी पर इस जीवन को कम से कम चार विशेष ढंगों से विकसित किया गया था। पहला, परमेश्वर जानता था कि मनुष्य के लिए अकेला रहना अच्छा नहीं है। उसने उसके लिए उसके जैसी ही एक सहायक बनाई और पुरुष और स्त्री में एक गूढ़ सम्बन्ध बना दिया। उसने उन्हें करने के लिए काम दिया। तीसरा, परमेश्वर ने जीवन के दूसरे रूपों पर उन्हें प्रभुता देकर उनके जीवन को समृद्ध बनाया। और सबसे अधिक महत्वपूर्ण, परमेश्वर ने उसे अपने साथ संगति की अनुमति दी।[2]

कितना सौभाग्य है मनुष्य के लिए! कितने आनन्द की बात है! कितना अच्छा विचार है! यह हो कैसे गया? यह क्यों हुआ? इस विषय पर तीसरे खण्ड ''हमारे साथ परमेश्वर का सम्बन्ध'' में विस्तार से चर्चा की जाएगी। परन्तु, अभी हमारे सामने काफी बड़ी चुनौती है।

उसके स्वरूप में बनाया गया

बाइबल में बड़ी सावधानी से लिखा गया है कि ''परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप के अनुसार उत्पन्न किया, अपने ही स्वरूप के अनुसार परमेश्वर ने उसको उत्पन्न किया, नर और नारी करके उसने मनुष्य की सृष्टि की'' (उत्पत्ति 1:27)। ''परमेश्वर ने ... उसके नथनों में जीवन का श्वास [*nishmath chayyim*] फूंक दिया; और आदम जीवता प्राणी [*nephesh*] बन गया'' (उत्पत्ति 2:7)। नेफेश एक इब्रानी शब्द है जिसमें काफी सूक्ष्म भेद हैं। क्योंकि यहां पर संदर्भ परमेश्वर द्वारा मनुष्य की रचना है, इसलिए इसका अर्थ ''प्राणी, सम्पूर्ण व्यक्ति'' से अधिक है।[3]

इसलिए, हम पाते हैं कि हम ''पृथ्वी के'' ही नहीं हैं। हम परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए ''सम्पूर्ण जीव'' हैं। परमेश्वर का सार आत्मा है, सो हमारा परमेश्वर के स्वरूप पर होना निश्चय ही भौतिक रूप नहीं है। हमारा परमेश्वर के स्वरूप पर होना शरीर पर

नहीं, बल्कि आत्मा पर आधारित है। जब परमेश्वर ने मनुष्य में जीवन का श्वास (*nishmath chayyim*) फूंका, तो उसे परमेश्वर का सार अर्थात उसका आत्मा मिल गया।

यद्यपि, सभी जीवों, पक्षियों आदि में भी वह है जिसे उत्पत्ति 1:30 में ''जीवन के प्राण'' कहा गया है। दोनों की व्यापकता या गुण में अन्तर हो सकता है। बाइबल कहती है, ''मनुष्य की आत्मा [*nishmath adam*] यहोवा का दीपक है'' (नीतिवचन 20:27)। मानवीय जीव ज्ञान पाने, निष्कपटता, और सचेत होने में सामर्थ है। आदम और हव्वा विवेकी, विचारवान, अपने आप और अपने आस-पास के वातावरण और परमेश्वर को जानते थे। यद्यपि उन्हें पृथ्वी की वस्तुओं से बनाया गया था, परन्तु उन्हें भौतिक अस्तित्व से बढ़कर परमेश्वर की ओर से दिए गए आत्मा के बहुमूल्य दान से और महत्व दिया गया था।[4] इससे उनके लिए परमेश्वर के साथ सार्थक सम्बन्ध बनाना सम्भव हो गया।

सृष्टिकर्त्ता तथा मनुष्य के बीच यह संगति सचमुच बड़ी सुखमय थी। अदन की वाटिका एक ऐसी जगह थी जो बिना किसी रुकावट के सदा तक रहने वाले स्वर्ग जैसे सुख की पक्की मित्रता थी (उत्पत्ति 2:7, 8)। इस सम्बन्ध में खत्म न होने वाले आनन्द की शक्ति थी। हम अनन्त आनन्द के लिए ''शक्ति'' कहते हैं क्योंकि बाइबल स्कूल में शिक्षा पाने वाला प्रत्येक बच्चा जानता है कि इसके बाद कुछ दुखद बात हुई। आदम और हव्वा को वाटिका से बाहर निकाल दिया गया। उन्हें मृत्यु दण्ड मिला था। उन्हें परिश्रम करने तथा पीड़ा सहने का शाप मिला था। अब से उन्हें परमेश्वर की उपस्थिति की महिमा का साथ नहीं मिलना था।

क्यों? क्योंकि बाग-ए-अदन में ''... जीवन के वृक्ष ... और भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष'' थे (उत्पत्ति 2:9ख)। परमेश्वर ने कहा था, ''... भले या बुरे के ज्ञान का जो वृक्ष है, उसका फल तू न खाना: क्योंकि जिस दिन तू उसका फल खाए उसी दिन अवश्य मर जाएगा'' (उत्पत्ति 2:17)। परमेश्वर ने बाग में *वह* वृक्ष क्यों रखा था? उसने पुरुष तथा स्त्री के लिए केवल ''जीवन का वृक्ष'' (उत्पत्ति 2:9) ही उपलब्ध करवाकर अपने साथ उनके सम्बन्ध को संतोषजनक क्यों न बनाए रखा?

ये प्रश्न जटिल लग सकते हैं। परन्तु, सावधानी से विश्लेषण करने पर इनका संतोषजनक उत्तर मिल जाता है। हमने संसार को इसकी व्यापकता में देखा है। हमने संसार के आश्चर्यों पर ध्यान दिया है। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि केवल एक ही प्राणी के लिए कहा गया है कि ''परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप पर बनाया।'' परमेश्वर द्वारा उपलब्ध करवाया गया मनुष्यों के लिए यह अच्छा संदर्भ कि वे परमेश्वर की समानता में हैं और परमेश्वर उनके साथ बातचीत करने का इच्छुक है, संकेत देता है कि उनकी रचना परमेश्वर के लिए विशेष महत्व रखती थी। यही प्राणी अपने सृष्टिकर्त्ता के साथ आत्मचेतन और उसकी बात मानने वाली बातचीत में योगदान कर सकते थे! बिना बाधा के, परमेश्वर के साथ सीधे संगति की कल्पना करें!

अपनी पसन्द चुनने के लिए बनाया गया

इस सम्बन्ध के अन्त तक बने रहने के लिए केवल एक ही बात आवश्यक थी कि यह सम्बन्ध मनुष्य और परमेश्वर में अपनी पसन्द चुनने की स्वतन्त्रता से हो। इसमें स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय लेने की छूट हो। स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी पूर्ण इच्छा व्यक्त करने के लिए स्वीकारने तथा नकारने की योग्यता तथा अवसर हो। परमेश्वर ने आदम और हव्वा को योग्यता (बुद्धि) और अवसर (वृक्ष) उपलब्ध करवाया। परमेश्वर ने उन्हें उसकी इच्छा को मानने या उसका उल्लंघन करने की खुली छूट दी। परमेश्वर और उसकी मानवीय सृष्टि के बीच परस्पर शर्त के बिना ऐसा नहीं हो सकता था।

आदम और हव्वा द्वारा गलत चुनने से, परमेश्वर की सृष्टि पाप, जुदाई, श्रापों, पीड़ा, कांटों, कुरूपता और मृत्यु से बिगड़ गई। क्या सृष्टि की रचना करने का परमेश्वर का शानदार कार्य असफल हो गया? नहीं। परमेश्वर का कार्य चलता रहता है। उसने सर्प (शैतान) को श्राप दिया जिसके कारण यह गिरावट आई थी और आने वाले एक विजेता के द्वारा पाप में गिर चुकी मनुष्य जाति को फिर से अपने साथ मिलाने की प्रतिज्ञा की:

> तब यहोवा परमेश्वर ने सर्प से कहा, तू ने जो यह किया है इसलिए तू सब घरेलू पशुओं, और सब बनैले पशुओं से अधिक शापित है; तू पेट के बल चला करेगा, और जीवन भर मिट्टी चाटता रहेगा–और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में, और तेरे वंश और इसके वंश के बीच में बैर उत्पन्न करूंगा, वह तेरे सिर को कुचल डालेगा, और तू उसकी एड़ी को डसेगा (उत्पत्ति 3:14, 15)।

पाद टिप्पणियां

[1]आदमी के लिए *adam* और भूमि के लिए इब्रानी शब्द *damah* में इस बात का संकेत है। तु. फ्रांसिस ब्राउन, एस. आर. ड्राइवर, और चार्ल्स ए. ब्रिगस, *ए हिब्रयु एण्ड इंग्लिश लैक्सिकन ऑफ़ द ओल्ड टैस्टामेन्ट* (ऑक्सफॉर्ड, क्लेयरडन, 1958), 9. [2]उत्पत्ति 1; 2 में पाये जाने वाले वृत्तांत में सृष्टि के वर्णन पर कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। सावधानीपूर्वक विश्लेषण के लिए, देखिए जॉन टी. विलिस, *जेनसिस,* द लिविंग वर्ड कमैन्ट्री (ऑस्टिन, टैक्स.: स्वीट, 1979), 78–115. उत्पत्ति 1–3 के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि बहुत से लोग इन अध्यायों को एक मिथ्या कहानी मानते हैं। इसके ''प्रमाण'' के लिए अकदियों की *इनुमा एलिश* की तरह जो उत्पत्ति के वर्णन का महत्व घटाती है सृष्टि की अन्य कहानियों से इसकी समानता की ओर ध्यान दिलाया जाता है (*एंसियंट नीयर ईस्टर्न टैक्सट्स रिलेटिंग टू द ओल्ड टैस्टामेंट,* अनु. ई. ए. स्पेज़र, 2रा सं. [प्रिंसटन, एन. जे., प्रिंसटन यूनिवर्सिटी, 1955], 60–62 में जेम्स बी. प्रिचर्ड, सं. ''अक्कडियन मिथ्स एण्ड एपिक्स'')। पहले पहले, कई बार बच्चे अपनी कक्षाओं में बोर्डों पर परमेश्वर को आदम और हव्वा को अदन से एक बड़ी सी लिमोसीन गाड़ी में बाहर निकालने के चित्र बनाते थे। इस व्यंग्य में इन बच्चों और माता-पिता के दिमाग में आए इन अध्यायों के प्रति व्यवहार पर हैरानगी हो सकती है। पवित्र शास्त्र के इस धोखे का एक कारण हमारे युग के वैज्ञानिक दिमाग में है। हम यह सोचना चाहते हैं कि सच्चाई वैज्ञानिक, मूल और वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए नहीं तो यह सच्चाई नहीं है। इससे सहायता मिल सकती है यदि हर रोज बाइबल पढ़ने वालों के साथ साथ सभी विद्वान, यह याद रखें कि यदि परमेश्वर

अपने, संसार, और हमारे साथ अपने सम्बन्ध के बारे में, वैज्ञानिक, शाब्दिक और वस्तुनिष्ट भाषा में सब कुब बता देता, तो हमें इसकी बहुत थोड़ी समझ आनी थी। बड़ी गहरी सच्चाइयां आम तौर पर साधारण से शब्दों में होती हैं। जो तथ्य दिमाग को चकराने वाले हैं वे उत्पत्ति की पुस्तक में सृष्टि की रचना और मनुष्य के पाप में गिरने के वृत्तांत में ही सामने आते हैं। आइए हम अपने ही प्रकाश और भले के लिए इन तथ्यों को स्वीकार करके आगे बढ़ें। [3]विस्तृत विश्लेषण के लिए, देखिए ब्राउन, ड्राइवर और ब्रिगस, *ए हिब्रयु एण्ड इंग्लिश लैक्सिकन,* 659–61. [4]''*Hmhsn* (*mhsn* से), श्वास, आत्मा, आत्मा का श्वास, मनुष्य का श्वास, आत्मा का प्राण, *hur* से अधिक स्पष्ट है, *shon* से अधिक एक सामान्य है, परन्तु दोनों के साथ उनके बीच में होने के कारण बदला जा सकता है; परन्तु केवल मनुष्य के सम्बन्ध में। यहां यह स्पष्टतः कुछ ऐसा संकेत देता है जो केवल परमेश्वर और मनुष्य के लिए ही सामान्य है अर्थात जो परमेश्वर की ओर से निकलकर मनुष्य में प्रवेश करता है–परमेश्वर का 'जीवन का श्वास' अर्थात परमेश्वर अपने आप में सक्रिय परमेश्वर का आत्मा, मनुष्य में यह आत्मिक सिद्धांत, उसके जीवन की आत्मा के लिए पुकारता है, परन्तु किसी भी प्रकार अपने वास्तविक व्यक्तित्व में आत्मा से कम नहीं है'' (लेन्ज, ''जेनसिस,'' 204)।